भारत कानून पुस्तकालय वेब संस्करण

यह उत्पाद लाइसेंस प्राप्त है: राव धनबीर सिंह

Docid # IndLawLib/2432555

2025 आईएनएससी 1095

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

डिवीजन बेंच

विनोद कुमार पांडे और अन्य

बनाम

शीश राम सैनी और अन्य

(पहले: पंकज मिथल और प्रसन्ना बी. वराले, जे.जे.)

सिविल अपील संख्या... 2025 (एसएलपी (सी) संख्या 7900/2019 से उत्पन्न) सिविल अपील संख्या... 2025 (एसएलपी (सी) संख्या... 2025 से उत्पन्न) (डी.सं. 10495/2019) के साथ सिविल अपील संख्या... 2025 (एसएलपी (सी) संख्या 7897/2019 से उत्पन्न) और सिविल अपील संख्या... 2025 (एसएलपी (सी) संख्या... 2025 से उत्पन्न) (डी.सं. 10508/2019)

निर्णय दिनांक : 10-09-2025

क. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) - धारा 154 - एफआईआर दर्ज करना - यदि सूचना से संज्ञेय अपराध का पता चलता है तो यह अनिवार्य है - उच्च न्यायालय एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दे सकता है, भले ही प्रारंभिक जांच रिपोर्ट कुछ और बताए - सूचना की सत्यता या विश्वसनीयता पंजीकरण के लिए पूर्व शर्त नहीं है। (पैरा 27, 31, 32, 36)

B. भारतीय संविधान, 1950 — अनुच्छेद 226 — दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (सीआरपीसी) — धारा 482 — असाधारण और अंतर्निहित अधिकार क्षेत्र का आह्वान — वैकल्पिक उपाय पूर्ण प्रतिबंध नहीं है — उच्च न्यायालय याचिकाओं पर विचार कर सकता है और प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश दे सकता है यदि वह संतुष्ट हो कि प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध बनता है, भले ही रिपोर्ट में कोई अपराध न होने का संकेत दिया गया हो। (अनुच्छेद 29, 30, 34)

सी. दंड संहिता, 1860 (आईपीसी) - धाराएँ 166, 218, 463, 465, 469, 120-बी - सीबीआई अधिकारियों द्वारा कथित रूप से किए गए अपराध - पद का

दुरुपयोग, झूठे रिकॉर्ड तैयार करना, मिलीभगत - लेटर्स पेटेंट अपीलों को स्वीकार्यता के आधार पर खारिज करना - सर्वोच्च न्यायालय ने एकल न्यायाधीश के आदेश की सत्यता पर गुण-दोष के आधार पर विचार किया। (पैरा 5, 8, 10, 22, 23, 24)

डी. अपील दायर करने में देरी - क्षमा - उच्च न्यायालय के समक्ष उपचार की कोशिश - एलपीए के सद्भावनापूर्ण अनुसरण द्वारा विलंब की व्याख्या, जिसे पोषणीयता के आधार पर खारिज कर दिया गया - सर्वोच्च न्यायालय ने जानबूझकर चूक और अधिकारों की सतर्कता के अभाव को देखते हुए विलंब को क्षमा कर दिया। (अनुच्छेद 1, 11, 12, 13)

ई. सीबीआई को पक्षकार बनाना - आवेदन खारिज करना - सीबीआई रिट याचिकाओं में एक पक्ष थी, उसने आदेश का उल्लंघन नहीं किया, वह पीड़ित पक्ष नहीं थी - सीबीआई अधिकारी व्यक्तिगत रूप से पीड़ित थे, संस्थान नहीं - सीबीआई की रिपोर्ट को चुनौती नहीं दी गई। (पैरा 17, 19, 20)

एफ. दिल्ली पुलिस के विशेष प्रकोष्ठ द्वारा जांच - उच्च न्यायालय के आदेश में संशोधन - विशेष प्रकोष्ठ मुख्य रूप से आतंकवाद के मामलों की जांच करता है - दिल्ली पुलिस द्वारा एसीपी से नीचे के पद के अधिकारी द्वारा जांच की जाएगी - जांच के दौरान प्रारंभिक जांच रिपोर्ट को विचार से बाहर रखने के बारे में स्पष्टीकरण। (पैरा 16, 39, 40)

जी. प्रारंभिक जांच रिपोर्ट - महत्व - संज्ञेय अपराध के बारे में अपना निष्कर्ष दर्ज करने की संवैधानिक न्यायालय की शक्ति को समाप्त करने के लिए निर्णायक नहीं - यदि आवश्यक हो तो जांच अधिकारी द्वारा जांच की अनुमति है, लेकिन इसे निर्णायक नहीं माना जाएगा। (पैरा 6, 28, 40)

एच. न्याय प्रदान करना - जाँचकर्ताओं की जाँच की आवश्यकता - लोक सेवकों द्वारा कथित अपराधों की जाँच में विलंब - कथित अपराधों को बिना जाँचे छोड़ देना न्याय का विरोधाभास होगा - व्यवस्था में जनता का विश्वास बनाए रखने के लिए जाँच आवश्यक है। (अनुच्छेद 37)

I. जांच में सहयोग - यदि अपीलकर्ता जांच में शामिल होते हैं और सहयोग करते हैं तो कोई बलपूर्वक कदम नहीं उठाया जाएगा - केवल तभी हिरासत में पूछताछ की जाएगी जब जांच अधिकारी आवश्यकता की संतुष्टि दर्ज करेगा - अपीलकर्ताओं को जांच में शामिल होने और आवश्यक होने तक गिरफ्तार न करने का निर्देश दिया जाएगा। (अनुच्छेद 41)

जे. अंतिम आदेश - दिनांक 26.06.2006 के उच्च न्यायालय के आदेश में संशोधन - खंडपीठ के आदेश के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज किया गया - अंतरिम आवेदनों का निपटारा किया गया। (पैरा 42)

प्रलय

पंकज मिथल, जे. - विलंब क्षमा किया गया।

2. छुट्टी मंजूर की गई।

3. दोनों पक्षों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार, विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री एस.वी. राजू और विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ध्रुव मेहता को सुना गया।

4. ये मामले काफी सरल हैं, लेकिन इनका इतिहास काफी उतार-चढ़ाव भरा है। इनमें अपीलकर्ता केंद्रीय जांच ब्यूरो **(1)** के दो अधिकारी हैं । एक हैं विनोद कुमार पांडे, जो सीबीआई के तत्कालीन इंस्पेक्टर थे और दूसरे हैं नीरज कुमार, जो सीबीआई के तत्कालीन संयुक्त निदेशक थे।

[1] इसके बाद इसे 'सीबीआई' कहा जाएगा

5. दो याचिकाएं रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 675/2001 और रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 738/2001, भारतीय संविधान के अनुच्छेद 226 के साथ दंड प्रक्रिया संहिता **[2]** , 1973 की धारा 482 के तहत क्रमशः विजय अग्रवाल और शीश राम सैनी द्वारा दायर की गईं, जिनमें सीबीआई में प्रतिनियुक्ति पर उपरोक्त दो अधिकारियों, अर्थात् विनोद कुमार पांडे और नीरज कुमार के खिलाफ भारतीय दंड संहिता **[4]** , 1860 की धारा 506, 341, 342 और 166, और धारा 218, 463, 465, 469, 166 और 120-बी के तहत अपराध करने के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट **[3]** दर्ज करने के निर्देश मांगे गए थे, जैसा कि रिट याचिकाओं में आरोप लगाया गया है।

[2] इसके बाद इसे 'Cr.PC' कहा जाएगा

[3] संक्षेप में 'एफआईआर'

[4] संक्षेप में 'आईपीसी'

6. उपरोक्त दोनों रिट याचिकाओं पर उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने 26.06.2006 को निर्णय दिया था, लेकिन समान शर्तों पर अलग-अलग आदेश पारित किए थे। दोनों याचिकाओं को आंशिक रूप से स्वीकार किया गया और दिल्ली पुलिस को निर्देश दिए गए कि वह क्रमशः शीश राम सैनी द्वारा लोधी कॉलोनी थाने में दिनांक 05.07.2001 को दर्ज कराई गई शिकायत और विजय अग्रवाल द्वारा दिल्ली पुलिस आयुक्त को दिनांक 23.02.2004 को संबोधित शिकायत में निहित आरोपों के आधार पर मामला दर्ज करे और मामले की जाँच दिल्ली पुलिस के विशेष प्रकोष्ठ द्वारा सहायक पुलिस आयुक्त के

पद से कम न हो, ऐसे अधिकारी से कराए जो संयुक्त निदेशक, सीबीआई द्वारा दिनांक 26.04.2005 को की गई जाँच रिपोर्ट में निहित निष्कर्षों और टिप्पणियों से अप्रभावित हो।

7. संक्षेप में, रिट याचिकाओं को आंशिक रूप से इस निर्देश के साथ अनुमति दी गई कि एफआईआर दर्ज की जाए, इस निष्कर्ष के साथ कि प्रथम दृष्टया अपीलकर्ता अधिकारियों के खिलाफ जांच के लिए संज्ञेय अपराध बनते हैं।

8. उच्च न्यायालय के दिनांक 26.06.2006 के उपरोक्त निर्णय(ओं) और आदेश(ओं) से व्यथित होकर, सीबीआई के दोनों अधिकारियों ने उच्च न्यायालय की खंडपीठ के समक्ष अलग-अलग लेटर्स पेटेंट अपील[5] दायर कीं । उक्त एलपीए को 13.03.2019 को पोषणीयता के आधार पर खारिज कर दिया गया।

[5] इसके बाद इसे 'एलपीए' कहा जाएगा

9. वर्तमान चार अपीलों में से, दो अपीलें [डी.सं.10495/2019 और डी.सं.10508/2019] विद्वान एकल न्यायाधीश के दिनांक 26.06.2006 के आदेश के खिलाफ हैं, जिसमें याचिकाओं को आंशिक रूप से अनुमति दी गई थी, और अन्य दो अपीलें [एसएलपी (सी) संख्या 7900/2019 और एसएलपी (सी) संख्या 7897/2019] उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के दिनांक 13.03.2019 के आदेश के खिलाफ हैं, जिसमें एलपीए को बनाए रखने योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया गया था।

10. हमने शुरू में ही पक्षकारों को स्पष्ट कर दिया था कि हम एलपीए की स्वीकार्यता के प्रश्न पर विचार नहीं करेंगे ताकि उनकी खारिजी से उत्पन्न अपीलों पर निर्णय दिया जा सके, क्योंकि हम दिनांक 26.06.2006 के निर्णय और आदेश(नों) की सत्यता पर गुण-दोष के आधार पर विचार करेंगे, जैसा कि खंडपीठ द्वारा एलपीए में किया जाता। पक्षकारों के वकील सहमत हुए और गुण-दोष के आधार पर तदनुसार तर्क प्रस्तुत किए।

11. एकल न्यायाधीश के दिनांक 26.06.2006 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने में 12 वर्ष से अधिक की देरी के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाई गई थी।

12. उक्त देरी को इस आधार पर समझाया गया है कि अपीलकर्ता उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष अपने एलपीए को सद्भावपूर्वक आगे बढ़ा रहे थे और जब उन्हें पता चला कि एलपीए बनाए रखने योग्य नहीं हैं और उन्हें बनाए रखने योग्य नहीं मानते हुए खारिज कर दिया गया है, तो उन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित निर्णय और आदेश को चुनौती देने का फैसला किया।

13. उपरोक्त स्पष्टीकरण के मद्देनजर, यद्यपि तकनीकी रूप से, एलपीए को आगे बढ़ाना और उस पर खर्च किया गया समय देरी को माफ करने का बहुत अच्छा कारण नहीं हो सकता है, लेकिन चूंकि एकल न्यायाधीश के दिनांक 26.06.2006 के निर्णय और

आदेश का विरोध करने में अपीलकर्ताओं की ओर से कोई जानबूझकर या जानबूझकर देरी या कोई चूक नहीं हुई है, बल्कि वे सभी अपने अधिकारों के प्रति पूरी तरह से सतर्क थे, हमने देरी को नजरअंदाज कर दिया है और पक्षों को गुण-दोष के आधार पर सुना है, विशेष रूप से, एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश की शुद्धता पर।

14. अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ वकील श्री रंजीत कुमार ने तर्क दिया कि शीश राम सैनी और विजय कुमार अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत सूचना/शिकायत से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है जिसके आधार पर न्यायालय एफआईआर दर्ज करने का निर्देश दे सके। उच्च न्यायालय एफआईआर दर्ज करने का निर्देश नहीं दे सकता था क्योंकि उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाने से पहले इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया था। दूसरे, उच्च न्यायालय संज्ञेय अपराध के होने का निष्कर्ष दर्ज नहीं कर सकता था जिससे जांच अधिकारी [6] के पास जांच पूरी होने के बाद आरोप पत्र दाखिल करने के अलावा कोई राय देने के लिए कुछ नहीं बचता। उन्होंने आगे तर्क दिया कि सीबीआई के संयुक्त निदेशक द्वारा की गई तथाकथित प्रारंभिक जांच में, यह बताया गया है कि जांच के उद्देश्य के लिए कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता है, इसलिए, उच्च न्यायालय के लिए अपने स्वयं के निष्कर्ष को प्रतिस्थापित करना और एफआईआर दर्ज करने का निर्देश देना खुला नहीं था।

[6] संक्षेप में 'आईओ'

15. उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि यदि तर्क के लिए यह मान भी लिया जाए कि विनोद कुमार पांडे के खिलाफ जांच का मामला बनता है, तो भी दूसरे अधिकारी नीरज कुमार को इसमें शामिल करने के लिए कोई भी कथन या सामग्री नहीं है।

16. अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार ने आगे दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने दिल्ली पुलिस के विशेष प्रकोष्ठ द्वारा जाँच कराने का निर्देश देकर स्पष्ट रूप से त्रुटि की है, जो सामान्यतः आतंकवाद से संबंधित मामलों की जाँच करता है। उच्च न्यायालय ने संयुक्त निदेशक, सीबीआई की 26.04.2005 की प्रारंभिक जाँच रिपोर्ट को जाँच के दौरान विचार से बाहर रखने का निर्देश देकर भी त्रुटि की है।

17. प्रतिवादियों की ओर से विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल श्री एस.वी. राजू ने सीबीआई को पक्षकार बनाने के लिए आवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें तर्क दिया गया कि चूंकि प्रारंभिक जांच सीबीआई के एक अधिकारी द्वारा की गई थी और मामले में सीबीआई के अधिकारियों के खिलाफ आरोप शामिल हैं, इसलिए जांच रिपोर्ट और उसके अधिकारियों का बचाव करने के लिए सीबीआई एक उचित पक्ष है।

18. गुण-दोष के आधार पर, उन्होंने दलील दी कि शिकायतों से कोई संज्ञेय अपराध नहीं बनता और ये धारा 197 दंड प्रक्रिया संहिता के अंतर्गत वर्जित हैं, क्योंकि अधिकारियों द्वारा जो भी कार्य किए गए हैं, वे अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में किए गए थे।

ये शिकायतें दिल्ली पुलिस अधिनियम, 1978 की धारा 140 के अंतर्गत भी आती हैं और समय-सीमा के अंतर्गत वर्जित हैं।

19. यह सच है कि सीबीआई उच्च न्यायालय के समक्ष दायर रिट याचिकाओं में एक पक्ष थी और उसने आक्षेपित आदेश(ओं) का विरोध नहीं किया था, जिसका अर्थ है कि सीबीआई ने उक्त आदेश(ओं) से कभी भी व्यथित महसूस नहीं किया। सीबीआई, यदि पक्षकार भी बनाई जाती है, तो उसे प्रतिवादी या प्रोफार्मा प्रतिवादी के रूप में जोड़ा जाएगा। कानून में यह सर्वविदित है कि एक प्रतिवादी या प्रोफार्मा प्रतिवादी आक्षेपित निर्णय का समर्थन तो कर सकता है, लेकिन प्रतिवादी के रूप में अपनी हैसियत से उसका विरोध नहीं कर सकता। सीबीआई ने उच्च न्यायालय के उपरोक्त आदेश(ओं) को स्वतंत्र रूप से चुनौती नहीं दी है।

20. इसके अलावा, दोनों अधिकारियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए निर्देश से सीबीआई वास्तव में व्यथित पक्ष नहीं है। ये अधिकारी व्यक्तिगत रूप से व्यथित हैं, न कि वह संस्थान जिसमें वे प्रतिनियुक्ति पर हैं। इसलिए, अधिकारियों को उचित कानूनी उपाय अपनाकर अपना बचाव करना चाहिए और सीबीआई का इससे कोई लेना-देना नहीं है। इसके अलावा, सीबीआई की रिपोर्ट को चुनौती नहीं दी गई है, इसलिए यह तर्क कि सीबीआई को अपने अधिकारी की रिपोर्ट का समर्थन करना होगा, उचित नहीं है। तदनुसार, हम सीबीआई को पक्षकार बनाने की अनुमति देना और विद्वान अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल द्वारा उठाई गई किसी भी आपत्ति पर विचार करना आवश्यक नहीं समझते।

21. उच्च न्यायालय की एकल पीठ के दिनांक 26.06.2006 के आरोपित निर्णय और आदेश(ओं) को स्पष्ट रूप से पढ़ने से पता चलता है कि सीबीआई के जिन अधिकारियों पर आरोप लगे हैं, उन्होंने अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में यदि अवैधता नहीं तो अनियमितताएं अवश्य की हैं और वे कथित अपराधों के लिए प्रथम दृष्टया दोषी हैं। शिकायतों और याचिकाओं में दिए गए कथनों से यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। दोनों अधिकारियों ने मिलीभगत से काम किया है और आरोप है कि अधिकारियों में से एक, विनोद कुमार पांडे ने वरिष्ठ अधिकारी, नीरज कुमार के इशारे पर काम किया था। यह प्रश्न कि क्या विनोद कुमार पांडे ने नीरज कुमार की सलाह या इशारे पर काम किया या उनकी मिलीभगत थी, एक तथ्यात्मक मामला है जिसकी जांच की जानी है।

22. उच्च न्यायालय की एकल पीठ ने रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 738/2001 में, सीबीआई के संयुक्त निदेशक की दिनांक 26.04.2005 की जांच रिपोर्ट सहित रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्री पर विचार करने के बाद पाया कि सीबीआई के अधिकारियों यानी अपीलकर्ताओं के खिलाफ प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का पता चलता है। यह आरोप कि दस्तावेजों को जब्ती ज्ञापन तैयार किए बिना 26.04.2000 को जब्त कर लिया गया था, जांच रिपोर्ट में भी पुष्ट हुआ, जिसमें दर्ज किया गया कि जब्ती ज्ञापन केवल 27.04.2000 को तैयार किया गया था, न कि 26.04.2000 को जब्ती के समय। न्यायालय इस

स्पष्टीकरण से असहमत था कि दस्तावेजों को 26.04.2000 को जांच के लिए ले जाया गया था और कहा कि ऐसा विवरण रिकॉर्ड और जांच के निष्कर्षों दोनों के विपरीत है। एकल न्यायाधीश ने यह मानने से भी इनकार कर दिया कि यह एक प्रक्रियात्मक अनियमितता थी और कहा कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जब्ती ज्ञापन की तैयारी सीबीआई अपराध मैनुअल के अनुसार नहीं थी और यह धारा 218, 463, 465, 469, 166 और 120-बी आईपीसी के दंडात्मक प्रावधानों को आकर्षित करती है।

23. विजय अग्रवाल द्वारा प्रस्तुत रिट याचिका (सीआरएल) संख्या 675/2001 में उच्च न्यायालय ने पाया कि वीके पांडे ने विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित 27.11.2000 के जमानत आदेश के स्पष्ट उल्लंघन में विजय अग्रवाल को 07.06.2001 और 11.06.2001 को बुलाया था, जो प्रथम दृष्टया अधिकार के दुर्भावनापूर्ण और दुर्भावनापूर्ण प्रयोग का संकेत देता है।

24. न्यायालय ने माना कि विजय अग्रवाल पर अपने भाई की नीरज कुमार के खिलाफ शिकायत वापस लेने के लिए दबाव डालने हेतु अभद्र भाषा का प्रयोग करने सहित गाली-गलौज, धमकी और धमकी के आरोप गंभीर थे और निराधार नहीं थे। न्यायालय ने कहा कि ऐसा आचरण गंभीर प्रकृति का था और प्रथम दृष्टया भारतीय दंड संहिता के तहत संज्ञेय अपराधों का खुलासा करता है।

25. उच्च न्यायालय ने सीबीआई के जाँच अधिकारी के इस निष्कर्ष को खारिज कर दिया कि कोई अपराध नहीं बनता और दुर्व्यवहार व जबरदस्ती के आरोप निराधार थे। यह टिप्पणी की गई कि आरोपों की सत्यता या सत्यता की जाँच प्रारंभिक जाँच के स्तर पर नहीं की जा सकती थी और ऐसे आरोप, गंभीर प्रकृति के होने के कारण, हल्के में नहीं लिए जा सकते थे। न्यायालय ने स्पष्ट किया कि विजय अग्रवाल द्वारा जाँच रिपोर्ट पर आपत्तियाँ दर्ज न कराना, उसके निष्कर्षों को स्वीकार करने के समान नहीं माना जा सकता।

26. रिट कोर्ट ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सीबीआई अधिकारी, लोक सेवक होने के नाते, ज़ब्ती के दौरान जानबूझकर झूठे या गलत रिकॉर्ड तैयार करने या अपने पद का दुरुपयोग करने पर छूट का दावा नहीं कर सकते। उनकी ओर से किए गए ऐसे कृत्य गंभीर हैं और इन्हें नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता, इसलिए इस मामले की जाँच ज़रूरी है।

27. **प्रदीप निरंकारनाथ शर्मा बनाम गुजरात राज्य** [7] में , इस न्यायालय ने अपने एक हालिया निर्णय में कहा कि जहाँ आरोप सरकारी पद के दुरुपयोग और सार्वजनिक पद पर रहते हुए भ्रष्ट आचरण से संबंधित हों, ऐसे कृत्य पूरी तरह से संज्ञेय अपराधों की श्रेणी में आते हैं और इसलिए, उनकी जाँच की जानी चाहिए और प्राथमिकी दर्ज करने से पहले किसी भी प्रारंभिक जाँच की आवश्यकता नहीं है। यदि पुलिस को दी गई सूचना

या प्रारंभिक रिपोर्ट से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा होता है, तो पुलिस का सीआरपीसी की धारा 154 के तहत बिना किसी देरी के प्राथमिकी दर्ज करना कर्तव्य है।

[7] (2025) 4 एससीसी 818

28. सीबीआई की रिपोर्ट, ज़्यादा से ज़्यादा, एफआईआर दर्ज होने से पहले पेश की गई एक प्रारंभिक जाँच रिपोर्ट होती है। हालाँकि, आमतौर पर एफआईआर दर्ज होने से पहले कानून में ऐसी जाँच की परिकल्पना नहीं की जाती है, और इसलिए यह कोई निर्णायक रिपोर्ट नहीं है जिस पर संवैधानिक न्यायालय को शिकायतों में दी गई सामग्री या आरोपों के आधार पर, यदि कोई संज्ञेय अपराध हुआ हो, तो उसके बारे में अपना निष्कर्ष दर्ज करने के अधिकार से वंचित किया जा सके।

29. निस्संदेह, उच्च न्यायालयों को रिट याचिकाओं या धारा 482 सीआरपीसी के तहत उन याचिकाओं को हतोत्साहित करना चाहिए जहाँ वैकल्पिक उपचार उपलब्ध हैं। फिर भी, जैसा कि **सकीरी वासु बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** [8] में भी कहा गया है , यह भी उतना ही सत्य है कि वैकल्पिक उपचार संविधान के अनुच्छेद 226 या धारा 482 सीआरपीसी के तहत उच्च न्यायालय के असाधारण क्षेत्राधिकार या अंतर्निहित क्षेत्राधिकार का आह्वान करने पर पूर्ण प्रतिबंध नहीं है।

[8] (2008) 2 एससीसी 409

30. रमेश कुमारी बनाम राज्य (एनसीटी दिल्ली) [9] में , न्यायालय ने केवल वैकल्पिक उपाय के आधार पर एफआईआर दर्ज करने की मांग वाली याचिका को खारिज करने की निंदा की, और कहा कि वैकल्पिक उपाय का आधार कानून में मामला दर्ज करने से इनकार करने का विकल्प नहीं होगा जब नागरिक की शिकायत इसे संज्ञेय अपराध बनाती है।

[9] (2006) 2 एससीसी 677

31. हाल ही में एक ऐतिहासिक निर्णय, **अनुराग भटनागर एवं अन्य बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली) एवं अन्य** [10] में , इस न्यायालय ने माना कि यद्यपि शिकायतकर्ता ने न्यायालय का दरवाजा खटखटाया था, उस मामले में मजिस्ट्रेट ने उपलब्ध वैकल्पिक उपायों का उपयोग किए बिना ही, यह केवल एक प्रक्रियात्मक अनियमितता थी, अवैधता नहीं, क्योंकि न्यायालय प्राथमिकी दर्ज करने का आदेश देने के लिए सक्षम था। यह भी कहा गया कि जब संज्ञेय अपराध के घटित होने का खुलासा करने वाली सूचना पुलिस को दी जाती है, तो वे प्राथमिकी दर्ज करने से इनकार नहीं कर सकते।

[10] 2025 आईएनएससी 895

32. चूँकि प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का पता चलने पर प्राथमिकी दर्ज करना पुलिस का कर्तव्य है, इसलिए पुलिस को उक्त सूचना की सत्यता और विश्वसनीयता की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है। **रमेश कुमारी** (सुप्रा) में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सूचना की सत्यता या विश्वसनीयता प्राथमिकी दर्ज करने की पूर्व शर्त नहीं है।

33. शिकायतकर्ता शीश राम सैनी और विजय कुमार अग्रवाल ने मामले की जांच के लिए दिनांक 05.07.2001 और 23.02.2004 को शिकायतों के माध्यम से पुलिस अधिकारियों से संपर्क किया था, लेकिन चूंकि इस पर कोई कार्रवाई नहीं की गई, बल्कि यह आरोप लगाया गया कि पुलिस अधिकारियों ने शिकायतों पर विचार करने में अनिच्छा व्यक्त की क्योंकि सीबीआई के अधिकारियों के खिलाफ जांच करना पुलिस की ओर से उचित नहीं होगा, इसलिए शिकायतकर्ताओं ने आवश्यक कार्रवाई के लिए संवैधानिक न्यायालय का दरवाजा खटखटाया।

34. इसलिए, यदि संवैधानिक न्यायालय ने याचिकाओं पर विचार करने और दोनों अधिकारियों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज करने का निर्देश देने में अपने विवेक का प्रयोग किया है, और यह संतुष्ट है कि उनके विरुद्ध प्रथम दृष्टया संज्ञेय अपराध का गठन हुआ है, तो हमें ऐसे विवेकाधिकार में हस्तक्षेप करने का कोई उचित कारण नहीं दिखता। जैसा कि अपीलकर्ताओं के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रंजीत कुमार ने तर्क दिया है, हम अधिक से अधिक यही कह सकते हैं कि संज्ञेय अपराधों के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई राय केवल प्रथम दृष्टया राय है और इसे इसी रूप में माना जाना चाहिए, ताकि जाँच के बाद जाँच अधिकारी के विवेकाधिकार पर कोई प्रभाव न पड़े।

35. दोनों अधिकारियों के विरुद्ध प्राथमिकी दर्ज होने से उनके प्रति कोई पूर्वाग्रह उत्पन्न होने की संभावना नहीं है। उन्हें जाँच में भाग लेकर यह सिद्ध करने का अधिकार होगा कि उन्होंने कोई ऐसा अपराध नहीं किया है, जैसा कि आरोप लगाया गया है। इसके बाद, जाँच अधिकारी जाँच के दौरान एकत्रित सामग्री पर विचार करते हुए, समापन रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकता है या आरोप पत्र दाखिल कर सकता है। यदि समापन रिपोर्ट दाखिल कर दी जाती है और मजिस्ट्रेट द्वारा स्वीकार कर ली जाती है, तो अपीलकर्ताओं को कोई शिकायत नहीं होगी। दूसरी ओर, यदि आरोप पत्र प्रस्तुत किया जाता है, तो अपीलकर्ताओं को उचित मंच के समक्ष अपना पक्ष रखने का अवसर मिलेगा।

36. तथापि, इस स्तर पर एफआईआर या जांच के पंजीकरण को रोकना विवेकपूर्ण कार्य नहीं होगा, जब उच्च न्यायालय ने अपनी संवैधानिक शक्तियों का प्रयोग करते हुए यह राय दी थी कि प्रथम दृष्टया दोनों अधिकारियों के खिलाफ संज्ञेय अपराध बनता है, वह भी सीबीआई के संयुक्त निदेशक की प्रारंभिक जांच रिपोर्ट पर विस्तृत विचार करने के बाद।

37. यह कहना अतिश्योक्ति होगी कि यह अपराध वर्ष 2000 में हुआ था और आज तक इसकी जाँच नहीं होने दी गई। यदि ऐसे अपराध की जाँच नहीं की जाती, खासकर जब

सीबीआई में प्रतिनियुक्ति पर तैनात अधिकारियों की संलिप्तता हो, तो यह न्याय का विरोधाभास होगा। कानून में यह सर्वोपरि है कि न्याय न केवल होना चाहिए, बल्कि न्याय होते हुए दिखना भी चाहिए। अब समय आ गया है कि व्यवस्था में व्यापक जन विश्वास बनाए रखने के लिए कभी-कभी जाँच करने वालों की भी जाँच होनी चाहिए।

38. उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, हम भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत अपने विवेकाधीन क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय के विवादित निर्णय और आदेश में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझते हैं।

39. तथापि, हम यह स्पष्ट करते हैं कि चूंकि दिल्ली पुलिस के विशेष प्रकोष्ठ को आतंकवाद से संबंधित मामलों की जांच करनी है, इसलिए मामले में एफआईआर दर्ज होने पर, जांच दिल्ली पुलिस द्वारा ही की जाएगी, लेकिन सहायक पुलिस आयुक्त के पद से नीचे के अधिकारी द्वारा नहीं।

40. दूसरा, ललिता कुमारी बनाम उत्तर प्रदेश सरकार एवं अन्य **[11]** में प्रतिपादित कानून के मद्देनजर , और उसके बाद इस आशय की पुनरावृत्ति कि यदि सूचना से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा होता है तो सीआरपीसी की धारा 154 के तहत एफआईआर दर्ज करना अनिवार्य है और ऐसी स्थिति में एफआईआर से पहले कोई प्रारंभिक जांच स्वीकार्य नहीं है; हालांकि, यदि प्राप्त सूचना से किसी संज्ञेय अपराध का खुलासा नहीं होता है लेकिन जांच किए जाने की आवश्यकता का संकेत मिलता है, तो प्रारंभिक जांच केवल संज्ञेय अपराध का खुलासा करने वाले तथ्यों का पता लगाने के लिए की जा सकती है, यदि कोई हो। इस प्रकार, सीबीआई के संयुक्त निदेशक द्वारा की गई जांच को प्रारंभिक जांच मानते हुए, हम जांच अधिकारी द्वारा, यदि आवश्यक हो, जांच के दौरान इसकी जांच करने की अनुमति देते हैं, लेकिन इसे निर्णायक नहीं मानते हैं। जांच अधिकारी, उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित आदेश(ओं) में या इस न्यायालय द्वारा दिए गए किसी निष्कर्ष या अवलोकन से प्रभावित हुए बिना, कानून के अनुसार सख्ती से जांच का संचालन करेगा और इसे यथासंभव शीघ्रता से, अधिमानतः तीन महीने के भीतर समाप्त करेगा क्योंकि मामला काफी पुराना है।

[11] (2014) 2 एससीसी 1

41. अपीलकर्ताओं को निर्देश दिया जाता है कि वे जाँच में शामिल हों और बुलाए जाने पर जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होकर उनका सहयोग करें। यदि वे जाँच में शामिल होते हैं और नियमित रूप से जाँच अधिकारी के समक्ष उपस्थित होते हैं, तो उनके विरुद्ध कोई भी बलपूर्वक कार्रवाई नहीं की जाएगी, जिसमें गिरफ्तारी भी शामिल है, जब तक कि जाँच अधिकारी इस बात से संतुष्ट न हो जाएँ कि किसी भी स्तर पर हिरासत में पूछताछ आवश्यक है।

42. दो अपीलें [एसएलपी (सी) संख्या 7900/2019 और एसएलपी (सी) संख्या 7897/2019] उपरोक्त शर्तों के अनुसार निपटाई जाती हैं और दो अपीलें

[डी.सं.10495/2019 और डी.सं.10508/2019] को उच्च न्यायालय के दिनांक 26.06.2006 के निर्णय और आदेशों को संशोधित करके आंशिक रूप से अनुमति दी जाती है, जैसा कि ऊपर बताया गया है।

43. लंबित आवेदन, यदि कोई हो, का निपटारा कर दिया जाएगा।